International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(3): 15-17

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(3): 15-17
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 08-03-2019
Accepted: 12-04-2019

शशिकांत मणि त्रिपाठी
शोधार्थी (पी.एच.डी) योग एवं आयुर्वेद विभाग, साँची बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत

डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री
सहायक प्राध्यापक, योग एवं आयुर्वेद विभाग साँची बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत

डॉ. अखिलेश कुमार सिंह
सहायक प्राध्यापक, योग एवं आयुर्वेद विभाग साँची बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत

डॉ. शाम गणपत तीखे
सहायक प्राध्यापक, योग एवं आयुर्वेद विभाग साँची बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत

Correspondence
शशिकांत मणि त्रिपाठी
शोधार्थी (पी.एच.डी) योग एवं आयुर्वेद विभाग, साँची बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत

श्रीमद्भगवद्गीता में योग के अधिगम की अवधारणा

शशिकांत मणि त्रिपाठी, डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री, डॉ. अखिलेश कुमार सिंह, डॉ. शाम गणपत तीखे

सारांश
भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना है। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से विकसित मनुष्य ही मनुष्यता के गुणों से ओतप्रोत होगा। मानव जीवन का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थ की प्राप्ति है। योग के अधिगम का लक्ष्य परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति है। मानव जीवन में अधिगम एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। अधिगम से तात्पर्य सीखने से है। मानवीय गुणों के अधिगम के बिना मनुष्य का निर्माण नहीं होता है। मनुष्य का देह धारण कर लेने मात्र से विवेक की प्राप्ति नहीं होती है। विवेक आत्मज्ञान से प्राप्त होता है। आत्मा का ज्ञान होने के पश्चात् ही मनुष्य विवेकवान होता है। विवेकशील मनुष्य ही सब में अपने को और सबको अपने में देखने की दृष्टि प्राप्त करता है। देखने की यह दृष्टि आत्मदर्शन के पश्चात् प्राप्त होती है। अध्यात्म के ज्ञान से जीवन के विषाद से मुक्ति मिलती है। दुःख की अत्यधिक निवृत्ति ही मोक्ष है, जिसकी प्राप्ति योग के अधिगम से संभव है।
प्रस्तुत शोध पत्र में गीता में योग के अधिगम के बारे में वर्णन किया गया है। जीवन में विषाद से मुक्ति अपने वास्तविक स्वरूप के बोध के साथ ही संभव है। देहात्म भाव से मुक्त होकर आत्म भाव में प्रतिष्ठित होना योग है। दृष्टा का अपने स्वरूप का अधिगम योग का अभीष्ट है। यह योग विद्या ही दृष्टा और दृश्य के संयोग से उत्पन्न अविद्याजनित मानसिक क्लेशों से मुक्ति दिलाती है। विद्या वह है जो मुक्ति दिलाएं (सा विद्या या विमुक्तये)।

कुटशब्दः योग, अधिगम, मानसिक विषाद, समत्व, निष्काम कर्म तथा कर्म की कुशलता

प्रस्तावना
भारतीय ज्ञान परंपरा में श्रीमद्भगवद्गीता प्रस्थान त्रयी में से एक घटक रही है। अपने सिद्धांतों को प्रमाणित करने के लिए आचार्यों ने गीता को एक प्रमाण ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया है। वास्तव में गीता महाभारत के भीष्म पर्व के 18 अध्यायों से ली गई है परंतु कालांतर में इसे एक स्वतंत्र ग्रंथ रूप में स्वीकार कर लिया गया। मनुष्य अपने जीवन में पुरुषार्थ से क्रमशः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए साधन करता है। धर्म पुरुषार्थ मनुष्य के जीवन निर्माण का आधार स्तंभ है। जीवन में जब ऐसे प्रश्न खड़े होते हैं जिनका उत्तर सामान्य मानस से प्राप्त नहीं होता तब गीता जीवन के धर्म ग्रंथ के रूप में समूल प्रश्नों का उत्तर देती है। गीता एक वास्तववादी ग्रंथ है, जिसमें यह बताया गया है कि जिस समय जो करना उचित है उसे करना ही धर्म है, चाहे वह युद्ध ही क्यों न हो। इस संसार में श्रीमदभगवद्गीता के समान मानव कल्याण के लिए उपयोगी शायद कोई ग्रंथ नहीं है। गीता में ज्ञान योग, ध्यान योग, कर्म योग, भक्ति योग आदि विभिन्न साधन बताए गए हैं, इन साधनों में से व्यक्ति अपनी योग्यता, रुचि और श्रद्धा के अनुसार अपना कल्याण कर सकता है।
श्रीमद्भगवद्गीता 18 अध्यायों एवं 700 श्लोकों में वर्णित है। प्रथम 6 अध्यायों में कर्म योग का ज्ञान दिया गया है, उसके पश्चात दूसरे 6 अध्यायों में भक्ति योग की शिक्षा दी गई है, तत्पश्चात् अंतिम 6 अध्याय में ज्ञान योग का अधिगम कराया गया है।
श्रीमद्भगवद्गीता की टीका की भूमिका में आदि शंकराचार्य जी कहते हैं कि ''संपूर्ण वैदिक शिक्षाओं के सारतत्व का संग्रह इस गीता शास्त्र में है, इसकी शिक्षा से सभी प्रकार की माननीय महत्वाकांक्षाओं की सिद्धि होती हैं।''

अधिगम
सामान्य अर्थों में अधिगम से तात्पर्य सीखने से है। सीखने के पश्चात् ही व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन होता है। कई बार व्यवहार परिवर्तन का कारण बीमारी, थकान और परिपक्वता भी हो सकती है, परंतु

अधिगम उस व्यवहार परिवर्तन को कहते हैं जो अपेक्षाकृत स्थाई हो। सीखना एक व्यवहारिक बदलाव है। यह बदलाव अनुभूति या अभ्यास के परिणामस्वरूप होता है, जो अपेक्षाकृत स्थाई होता है। किसी भी प्रकार के शिक्षण का मूल उद्देश्य अधिगम है।

श्रीमद्भगवद्गीता में योग के अधिगम की अवधारणा

शाब्दिक अर्थों में योग से तात्पर्य जोड़ना है। किन्हीं दो वस्तुओं का मिलना ही योग है। यहां जीवात्मा और परमात्मा का मिलन योग है। मिलन की इस प्रक्रिया को प्रक्रिया को गीता में बार–बार वर्णित किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता योग शास्त्र है। इसको उपनिषद और ब्रह्म सूत्र के बराबर का ग्रंथ माना गया है। यह तीनों ग्रंथ मिलकर प्रस्थान त्रयी कहलाते हैं। गीता के 18 अध्याय महाभारत के भीष्म पर्व के 23 से 40 अध्यायों के संकलन हैं, इसमें 700 श्लोक हैं। इसके उल्लेखित 18 अध्यायों में किसी न किसी रूप में योग का निरूपण किया गया है। योग का परम लक्ष्य अपने वास्तविक सत्य स्वरूप की प्राप्ति है, जिसके पश्चात् पूर्णता की अनुभूति होती है। इस लक्ष्य तक पहुंचने के तीन मार्ग हैं– ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग और कर्म मार्ग। ज्ञानयोग के द्वारा वास्तविकता का ज्ञान, भक्ति योग के द्वारा परमात्मा की उपासना और कर्म योग के द्वारा अपने संकल्प को परमात्मा को समर्पित कर फल की आकांक्षा से मुक्त होकर अर्थात् निष्काम होकर कर्म करना बताया गया है। मनुष्य अपने प्राकृतिक गुणों के कारण चिंतनशील, भावुक और सक्रिय प्रवृत्ति के होते हैं, उनकी इस विभिन्नता के कारण ही वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति के तीन मार्ग बताए गए हैं। अद्वय ज्ञान वास्तव में प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त होता है। अधिगम, अभ्यास और अनुभूति का विषय है। ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में विद्यमान बाधाओं के हटते ही ज्ञान का प्रकाश स्वयमेव प्रकट हो जाता है।

गीता में योग का अधिगम

योग के अधिगम का लक्ष्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना है। गीता में मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए अधिविद्या ब्रह्मविद्या के साथ ही साथ उसके अनुशासन अर्थात योगशास्त्र का विस्तार से वर्णन किया गया है।

मनुष्य ब्रह्म का अंश है। यह ज्ञान शाब्दिक न होकर अनुभूतिपरक है। इस अद्वय ज्ञान के साक्षात्कार के परिणामस्वरूप परमात्मा से इतर कोई भी अनुभूति केवल भ्रांति प्रतीत होती है। योगशास्त्र ब्रह्मविद्या के सिद्धांतों तक ही सीमित न रहकर आध्यात्मिक अनुभूति की गति विज्ञान का भी अधिगम कराता है। योग शब्द का निर्माण ''युज'' धातु से हुआ है, जिसका अर्थ जोड़ना है। योग से तात्पर्य अपनी आत्मशक्ति को एक जगह जोड़ना, संतुलित करना और उसे विस्तार देना है।

गीता मनुष्य के समक्ष सर्वांग–संपूर्ण योग शास्त्र प्रस्तुत करती है, जिसमें आत्मा की स्वतंत्रता और एकात्मता के ज्ञान के साथ ही साथ आत्म विकास के माध्यम से ब्रह्म तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त होता है। यह आत्म ज्ञान मनुष्य जाति को जीवन के नवीन अर्थ तक ले जाता है। इस अनुशासन से संबंधित प्रत्येक वस्तु को योग की संज्ञा प्रदान की जाती है। जैसे– ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग आदि। ज्ञान वास्तव में एक प्रत्यक्ष अनुभव है, जो ज्ञान प्राप्ति के मार्ग की बाधाओं के हटते ही प्रकाशित हो जाता है। मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार ज्ञान का अधिगम करता है। सामान्यतः मनुष्य चिंतनशील, भावुक और सक्रिय प्रकृति का होता है। चिंतनशील प्रकृति के मनुष्य ज्ञान के मार्ग अर्थात ज्ञानयोग, भावुक प्रकृति के मनुष्य भक्ति के मार्ग अर्थात भक्तियोग और सक्रिय प्रकृति के मनुष्य कर्म के मार्ग अर्थात कर्मयोग का अनुसरण करते हैं। इस प्रकार मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार योग सीखता रहता है।

गीता में वर्णित ''सांख्य'' शब्द से आशय सांख्य दर्शन से और ''योग'' शब्द से आशय पातंजल योगदर्शन से नहीं है। गीता में सांख्य अद्वय ज्ञान और कामनाओं के परित्याग पर जोर देता है और योग समत्व भाव के साथ कर्म करने पर। कामना युक्त कर्म समत्व भाव के साथ संभव नही है।

सुख–दुख कामना युक्त कर्म के परिणाम हैं। सामान्यतया सुख की कामना और दुख से मुक्ति के लिए मनुष्य कर्म करता है। यह कर्म बंधनकारी है। बंधन से मुक्ति के लिए गीता में कहा गया है कि–

> कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
> मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। 2/47 गीता

इस कर्मभूमि में जीव को कर्म करने का अधिकार है पर फल पर अधिकार नहीं है। कर्म का उद्देश्य फल नहीं होना चाहिए और न ही अकर्म के प्रति आकर्षण होना चाहिए। कर्मयोग के इस प्रसिद्ध श्लोक में अनासक्ति का सिद्धांत मूल रूप से विद्यमान है। जीवन में सफलता–असफलता का संबंध सिर्फ व्यक्ति के कर्म पर ही नहीं अपितु अनेक कारणों पर निर्भर है। मनुष्य जब समस्त प्रकार की आसक्तियों को त्यागकर निष्काम भाव से सिद्धि और असिद्धि में मन को सामान सामान रखकर अपना कर्तव्य कर्म करता है तब इसे योग कहते हैं, क्योंकि मन की समता ही योग है–

> योगस्थः कुरू कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
> सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। 2/48 गीता

जिस मनुष्य ने अपने मन को बुद्धि से जोड़कर अपने को स्वरूप में स्थित कर लिया है उसके लिए अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्म और उनसे प्राप्त परिणाम का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। वह इन सबसे मुक्त हो जाता है। योग बुद्धि से युक्त होकर सब कर्मों को करने की कुशलता का नाम योग है–

> बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
> तस्माद्योगाय युज्यस्वः योगः कर्मसु कौशलम्।। 2/50 गीता

सफलता और विफलता में मन को सामान बनाए रखने का नाम ही योग है और यही कर्म की कुशलता है, जिसमें कर्ता कर्म करने को ही अपना अधिकार समझता है और निष्काम भाव से सतत कर्म करता रहता है। इस प्रकार किया जाने वाला कर्म मोक्ष का कारण बनता है। योग का परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है।

फल की कामना में किया जाने वाला कर्म दुःख का कारण बनता है। योगी फल की इच्छा न रखते हुए निष्काम कर्म करता है। निष्काम कर्म का परिणाम दुःख के संयोग से वियोग है। योग वह विद्या है जो दुःख के संयोग से अलग करती है, इसलिए दृढ़ संकल्प और अनुद्विग्न मन से योग का अभ्यास करना चाहिए।

> तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
> स निश्चयेन योक्तव्यो तोगोऽनिर्विण्णचेतसा।। 6/23 गीता

योग की साधना करने वाला साधक जब बुद्धि योग से समत्व भाव को प्राप्त हो जाता है तब वह समस्त प्राणियों में आत्मा को और आत्मा में समस्त प्राणियों को देखने की दृष्टि प्राप्त कर लेता है। वह सब जगह एक जैसा ही देखता है।

> सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
> ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।। 6/29 गीता

यह दृष्टि तब प्राप्त होती है जब दृष्टा को दृश्य जगत से वियोग होने के पश्चात् अपने स्वरूप का ज्ञान होता है। अपने स्वरूप का वास्तविक ज्ञान योग है।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्। 1/3 योगसूत्र

बुद्धि से युक्त मन समानता के स्वभाव वाला हो जाता है। सामान्यतया मन का स्वभाव चंचल है। योग के अभ्यास एवं वैराग्य से उसे वश में किया जा सकता है, इसलिए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को योगी बनने की शिक्षा दे रहे हैं क्योंकि योगी तपस्वियों से, ज्ञानियों से और कर्मकांडियों से भी बड़ा है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।। 6/46 गीता

उपसंहार

श्रीमद्भगवद्गीता में योग के अधिगम से तात्पर्य मन की स्थिरता से है, जिसकी सिद्धि अभ्यास और वैराग्य से संभव है। स्थिर मन से आशय समान स्वभाव वाले मन से है, जिसमें सिद्धि और सिद्धि के प्रति समत्व भाव होता है। समत्व भाव से किया जाने वाला कर्म दुःख से मुक्ति दिलाता है। योग कर्म की कुशलता है। योग में कुशल योगी सब में अपनी आत्मा को और सबको अपनी आत्मा में देखता है। ऐसी दृष्टि के साथ किया जाने वाला जाने वाला कर्म मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है। योग का परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है, जिसकी सिद्धि बुद्धि योग से समत्व भाव के साथ किये जाने वाले निष्काम कर्म से होती है। यही कर्म की कुशलता है और यह कुशल कर्म ही योग है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अजीर्मुरहमान, 1978 सामान्य मनोविज्ञान विषय और व्याख्या, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली
2. गोयन्दका हरिकृष्णदास, संवत् 2072 योगदर्शन, गीताप्रेस, गोरखपुर
3. तिलक लोकमान्य बालगंगाधर, 2017 गीता रहस्य डायमण्ड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली
4. तीर्थ स्वामी ओमानंद, संवत् 2069 पातंजल योग प्रदीप, गीताप्रेस, गोरखपुर
5. ब्रह्मप्रकाश, 2009 बाल मनोविज्ञान यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली
6. जयसवाल डॉ. सीताराम, 2004 भारतीय मनोविज्ञान और शिक्षा, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली
7. मिश्र ब्रजकुमार, 2010 मनोविज्ञान, मानव व्यवहार का अध्ययन, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
8. राधाकृष्ण डॉ. सर्वपल्ली, 2012 भगवद्गीता, हिंद पॉकेट बुक, नई दिल्ली
9. शांकर भाष्य, श्रीमद्भगवद्गीता, सं. 2073 गीताप्रेस, गोरखपुर
10. स्वामी अपूर्वानंद, 1988 श्रीमद्भगवद्गीता, रामकृष्णमठ, रामकृष्ण आश्रम, नागपुर